

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 3: हिरण्यकशिपु का वरदान

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



मन्दराचल की एक निर्जन घाटी में एक असुर-राज अपने पैरों के अँगूठों के बल पर खड़ा है, दोनों भुजाएँ आकाश की ओर उठाएँ, और ऐसी प्रचण्ड तपस्या में जल रहा है कि समुद्र उमड़ पड़ते हैं और तारे अपने मार्ग से डिग जाते हैं। वह ईश्वर को नहीं खोज रहा। वह स्वयं ईश्वर बनना चाहता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में हिरण्यकशिपु ने अपने मारे गए भाई का शोक मनाया, अपनी माता को अविनाशी आत्मा पर एक उपदेश देकर सान्त्वना दी, और एक भयंकर महत्वाकांक्षा का संकल्प लिया। यह अध्याय उस महत्वाकांक्षा को क्रियान्वित होते हुए दिखाता है, जब असुर की तपस्या तीनों लोकों को हिला देने तथा स्वयं ब्रह्मा को उसके पास खींच लाने योग्य प्रचण्ड हो जाती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 3
- अध्याय-शीर्षक: हिरण्यकशिपु की तपस्या और अमरता का वरदान
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद (सम्राट युधिष्ठिर को कथा सुनाते हुए); कथा के भीतर, ब्रह्मा तथा हिरण्यकशिपु
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर; कथा के भीतर, ब्रह्मा, देवता तथा हिरण्यकशिपु
- मुख्य स्थान: मन्दराचल की एक घाटी, जहाँ हिरण्यकशिपु तपस्या करता है; तथा ब्रह्मा का लोक, जहाँ व्याकुल देवता भागते हैं
- मुख्य विषय-वस्तु: हिरण्यकशिपु की भयंकर तपस्या, उससे उत्पन्न ब्रह्माण्डीय क्षोभ, तथा ब्रह्मा द्वारा दिया गया चतुराई से गढ़ा गया निकट-अमरता का वरदान
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 3, श्लोक 1–38
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

मृत्यु से परे एक महत्वाकांक्षा

नारद युधिष्ठिर को अपनी कथा जारी रखते हैं। वे कहते हैं कि हिरण्यकशिपु ने एक ही प्रबल इच्छा मन में धारण कर ली थी: अजेय बनना, जरा तथा मृत्यु से मुक्त होना, तथा तीनों लोकों का एकमात्र सम्राट बनना — जिसका कहीं कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो।

श्रीनारद उवाच

हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ।

आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥

śrī-nārada uvāca hiraṇyakaśipū rājann ajeyam ajarāmaram ātmānam apratidvandvam eka-rājanṁ vyadhitsata

अर्थ: नारद ने कहा: हे राजन्! हिरण्यकशिपु स्वयं को अजेय, जरा तथा मृत्यु से रहित, प्रतिद्वन्द्वी-रहित तथा सबका एकमात्र अधिपति बनाना चाहता था। (SB 7.3.1)

इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए वह मन्दराचल की एक घाटी में चला गया और अत्यन्त उग्र प्रकार की तपस्या में लग गया। वह दोनों भुजाएँ आकाश की ओर उठाए, दृष्टि गगन में स्थिर किए, और अपने बड़े पैरों के अँगूठों के बल पर खड़ा रहा। उसकी जटाओं का चकाचौंध करता तेज प्रलयकाल के सूर्य की किरणों-सा दहक रहा था। उसकी तल्लीनता इतनी पूर्ण थी कि जो देवता पहले अपने घरों से खदेड़ दिए गए थे, वे उसकी अनुपस्थिति में चुपचाप अपने-अपने धामों को लौट आए।

लोक जलने लगते हैं

यह कोई साधारण तपस्या न थी। हिरण्यकशिपु के मस्तक से तपस्या की एक धूम्रमयी अग्नि उठकर सब दिशाओं में फैल गई, जो ऊर्ध्व लोकों, अधो लोकों तथा मध्य के प्रदेश को झुलसाने लगी। नदियाँ तथा समुद्र उमड़ पड़े; अपने महान विभागों तथा पर्वतों सहित पृथ्वी काँप उठी; तारे तथा ग्रह अपने स्थानों से डिग गए, और दसों दिशाएँ मानो अग्नि में फूट पड़ीं। एक ही प्राणी की एकाग्र इच्छा-शक्ति की उष्णता से ब्रह्माण्ड स्वयं विकल हो उठा।

इसे सहन न कर पाने पर देवताओं ने स्वर्ग छोड़ दिया और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के लोक में भाग गए, तथा अपनी व्यथा उनके सम्मुख रखी। हिरण्यकशिपु की तपस्या से पीड़ित होकर, उन्होंने कहा, वे अब स्वर्ग में नहीं रह सकते; उन्होंने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि उन लोकों के नष्ट होने से पूर्व, जो उन्हें धारण करते हैं, कोई उपाय करें। फिर उन्होंने असुर का वास्तविक प्रयोजन प्रकट किया: अपनी तपस्या के प्रबल बल से वह ब्रह्मा के ही परम पद को पाना चाहता है, समस्त नैतिक व्यवस्था को उलट देना चाहता है — पाप को ऊँचा उठाकर तथा धर्म को गिराकर, देवताओं और ऋषियों को पाताल-लोकों में धकेलकर तथा असुरों को उच्च लोकों में चढ़ाकर — और संसार को उससे सर्वथा भिन्न बना देना चाहता है जैसा वह रहा है। उन्होंने अपनी सूचना में असुर के अपने ही तर्क को ज्यों-का-त्यों दुहराया।

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ।

अध्यास्ते सर्वधिष्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥ ९ ॥

तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ।

कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥ १० ॥

*śṛṣṭvā carācaram idaṁ tapo-yoga-samādhinā adhyāste sarva-dhiṣṇeyebhyaḥ parameṣṭhi
nījāsanam*

*tad ahaṁ vardhamānena tapo-yoga-samādhinā kālātmanoś ca nityatvāt sādhaiṣye
tathātmanah*

अर्थ: क्योंकि ब्रह्मा ने अथक तपस्या, योग-शक्ति तथा समाधि के बल पर हर दूसरे सिंहासन से ऊपर अपना अद्वितीय पद पाया है, और क्योंकि आत्मा तथा काल दोनों अनन्त हैं, मैं भी जन्म-जन्मान्तर तक उसी साधना में लगा रहूँगा, जब तक कि उनका सिंहासन मेरा न हो जाए। (SB 7.3.9-10)



हिरण्यकशिपु की तपस्या की अग्नि से झुलसे देवता स्वर्ग छोड़कर ब्रह्मा के लोक में भागते हैं, और सृष्टिकर्ता से प्रार्थना करते हैं कि लोकों के विनाश से पूर्व कोई उपाय करें (SB 7.3.4-13)।

ब्रह्मा तपस्वी के पास आते हैं

देवताओं की सुनकर ब्रह्मा भृगु, दक्ष आदि ऋषियों के साथ हिरण्यकशिपु के आश्रम की ओर चल पड़े। पहले तो वे उस दैत्य को खोज ही न सके, क्योंकि तपस्वी की देह इतने लम्बे समय तक निश्चल पड़ी रही थी कि वह बाँबियों, घास तथा बाँसों के नीचे पूर्णतः ढँक गई थी, उसकी चर्बी, त्वचा, माँस तथा रक्त चींटियों द्वारा खा लिए गए थे — मानो उसके प्राण केवल उसकी अस्थियों से ही टँगे हों। ब्रह्मा यह देखकर विस्मित रह गए कि वह अब भी अपनी तपस्या से लोकों को झुलसा रहा था, मानो बादलों से पूर्णतः ढँका हुआ सूर्य।

स्वस्थ करने से पहले ब्रह्मा ने उस चींटी-खाए तपस्वी से सीधे कहा। उठो, उठो, उन्होंने कहा, क्योंकि ऐसी तपस्या न तो तुमसे पहले किसी ऋषि ने की है, न इसके पश्चात कोई करेगा; स्वयं ब्रह्मा ने भी स्वीकार किया कि वे इससे पराजित हो गए हैं, और हिरण्यकशिपु जो भी वरदान चाहे, उसे देने के लिए तत्पर हो गए (SB 7.3.17-20)। फिर भी उसी क्षण ब्रह्मा ने चुपचाप वह एक सीमा खींच दी जिसे उनका वरदान कभी लाँघ नहीं सकता था: उनके साथ रहने वाले देवता साधारण प्राणियों की भाँति नहीं मरते, किन्तु दिति-पुत्र हिरण्यकशिपु फिर भी मृत्यु के अधीन ही रहेगा — यह भेंट व्यर्थ नहीं जाएगी, ब्रह्मा ने कहा, परन्तु यह उस शर्त को मिटा नहीं सकती (SB 7.3.21)। इस प्रकार, हिरण्यकशिपु द्वारा अपनी विस्तृत याचना का एक भी शब्द कहे जाने से बहुत पहले ही, वह द्वार जिससे अन्ततः मृत्यु आएगी, उसी के स्पष्ट स्वीकार से खुला छूट चुका था जो उसे वरदान देने ही वाला था।

तब ब्रह्मा ने अपना कमण्डलु उठाकर उसके पवित्र जल से असुर की चींटी-खाई देह पर छींटे दिए। तत्क्षण हिरण्यकशिपु बाँबी से ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे ईधन से अग्नि प्रकट होती है — उसका मन ओजस्वी, इन्द्रियाँ तीक्ष्ण, तथा देह पूर्ण एवं वज्र-सी दृढ़, युवा, और पिघले हुए स्वर्ण-सी दीप्त।



ब्रह्मा अपने हंस पर विराजमान होकर उस चींटी-ढँके, क्षीण तपस्वी पर अपने कमण्डलु का पवित्र जल छिड़कते हैं, और हिरण्यकशिपु पुनः स्वस्थ होकर उठ खड़ा होता है — युवा, पूर्ण, और पिघले स्वर्ण-सा दीप्त (SB 7.3.14-23)।

असुर की सृष्टिकर्ता-स्तुति

ब्रह्मा को अपने हंस-वाहन पर आकाश में स्थित देखकर हिरण्यकशिपु ने आनन्द से अभिभूत होकर पृथ्वी पर सिर टेककर प्रणाम किया। हाथ जोड़कर उठते हुए, अपलक नेत्रों से सृष्टिकर्ता को निहारते हुए, अश्रु बहाते तथा रोमांचित होकर उसने एक दीर्घ स्तुति की। उसने परम तत्त्व को प्रकृति के तीनों गुणों — सत्त्व, रज तथा तम — के सर्वव्यापी आधार के रूप में वन्दना की, उस स्वयं-प्रकाश तत्त्व के रूप में जो अपने ही तेज से युग-युग तक समस्त ब्रह्माण्ड का प्रक्षेपण, पालन तथा संहरण करता है (SB 7.3.26-27)।

श्रीहिरण्यकशिपुरुवाच

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृतम् ।

अभिव्यनग्जगदिदं स्वयञ्ज्योतिः स्वरोचिषा ॥ २६ ॥

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ।

रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २७ ॥

śrī-hiraṇyakaśipur uvāca kalpānte kāla-sṛṣṭena yo 'ndhena tamasāvṛtam abhivyanag jagad idaṁ svayañjyotiḥ sva-rociṣā

ātmanā tri-vṛtā cedaṁ sṛjaty avati lumpati rajaḥ-sattva-tamo-dhāmne parāya mahate namaḥ

अर्थ: हिरण्यकशिपु ने कहा: मैं उस महान परम सत्ता को प्रणाम करता हूँ, जो सत्त्व, रज तथा तम का आश्रय है, जो स्वयं-प्रकाश होकर, प्रत्येक कल्प के अन्त में काल द्वारा फैलाए गए घोर अन्धकार से इस ब्रह्माण्ड को प्रकट करता है, और जो उसी त्रिगुणात्मक प्रकृति के द्वारा इसे रचता, पालता तथा पुनः विलीन करता है। (SB 7.3.26-27)

उसने उन्हें आदि-कारण के रूप में सराहा, जो प्राणों, इन्द्रियों, मन, बुद्धि तथा भूतों के रूप में प्रकट हैं, तथा प्रत्येक देहधारी के भीतर बसे अन्तर्यामी एवं उनकी चेतना के स्रोत आत्मा के रूप में हैं (SB 7.3.29)। हिरण्यकशिपु ने स्वीकार किया कि ब्रह्माण्ड में धारण किए गए हर रूप से परे, वह एक साथ निर्गुण ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा स्वयं भगवान् — सबसे प्राचीनतम — है (SB 7.3.33)। उसने घोषित किया कि उस परम सत्ता से पृथक् कुछ भी नहीं है — न कारण, न कार्य, न चर, न अचर (SB 7.3.32)।



पुनः स्वस्थ तथा आनन्दित होकर हिरण्यकशिपु हाथ जोड़े तथा विस्मय के अश्रु बहाते हुए वरदाता ब्रह्मा की स्तुति करता है (SB 7.3.24-34)।

वह वरदान जिसने हर द्वार बन्द कर दिया

तब हिरण्यकशिपु ने अपनी याचना की — और यहाँ अध्याय स्वयं मृत्यु को मात देने पर तुले हुए मन की चतुराई को प्रकट करता है। उसने सीधे-सीधे अमर होने का वरदान नहीं माँगा, क्योंकि वह जानता था कि किसी भी सृष्ट प्राणी को परम अमरता नहीं दी जा सकती। इसके स्थान पर उसने एक-एक कर हर उस मार्ग को बन्द करने का प्रयत्न किया जिससे मृत्यु आ सकती थी।

उसने प्रार्थना की — मेरी मृत्यु ब्रह्मा द्वारा रचे गए किसी भी प्राणी से न हो। न भवन के भीतर हो, न बाहर; न दिन में, न रात में; न पृथ्वी पर, न आकाश में; न किसी अस्त्र से; न किसी मनुष्य से, न किसी पशु से; न किसी सजीव या निर्जीव प्राणी से; न देवताओं से, न असुरों से, न महानागों से।

नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ।

न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥ ३६ ॥

nāntar bahir divā naktam anyasmād api cāyudhaiḥ na bhūmau nāmbare mṛtyur na narair na mṛgair api

अर्थ: मेरी मृत्यु न किसी भवन के भीतर हो न बाहर, न दिन में न रात में, न किसी अस्त्र से न किसी अन्य कारण से; न भूमि पर न आकाश में, तथा न किसी मनुष्य के हाथों न किसी पशु के। (SB 7.3.36)

इसमें उसने और भी जोड़ा: कि युद्ध में उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो, समस्त देहधारियों पर उसका निर्विवाद आधिपत्य हो, लोकपालों के समान उसका ऐश्वर्य हो, तथा तपस्या एवं ध्यान में श्रेष्ठ जनों द्वारा अर्जित अमोघ योग-सिद्धियाँ उसे प्राप्त हों। यह, उसके अपने अनुमान में, एक निर्दोष दुर्ग था — हर द्वार बन्द, हर प्राचीर ऊँची। उसे विश्वास था कि उसने स्वयं को ऐसा देवता बना लिया है जिसकी मृत्यु सम्भव ही नहीं।



हिरण्यकशिपु अपना चतुराई से गढ़ा गया निकट-अमरता का वरदान माँगता है — न दिन में न रात में, न भीतर न बाहर, न मनुष्य से न पशु से, न पृथ्वी पर न आकाश में मृत्यु — यह मानते हुए कि उसने मृत्यु के प्रवेश का हर द्वार बन्द कर दिया है (SB 7.3.35-38)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अद्भुत शक्ति आध्यात्मिक सिद्धि के समान नहीं है। हिरण्यकशिपु की तपस्या इतनी उग्र है कि स्वयं ब्रह्मा स्वीकार करते हैं कि न तो उससे पहले किसी ऋषि ने ऐसा किया है, न इसके पश्चात कोई करेगा (SB 7.3.19) — फिर भी ब्रह्मा, वरदान देते हुए भी, चुपचाप उसे स्मरण कराते हैं कि वह अब भी मृत्यु के अधीन ही है (SB 7.3.21)। किसी आध्यात्मिक प्रयास का आकार उसका मूल्य निर्धारित नहीं करता; केवल उसके पीछे का भाव ही करता है। ईश्वर-प्रेम के स्थान पर अहंकार तथा एकाधिपत्य की भूख से प्रेरित होकर, वही अग्नि जो समुद्रों को उमड़ा देती है तथा तारों को उनके मार्ग से डिगा देती है (SB 7.3.2-5), केवल उस अहं को ही बड़ा करती है जिसे उसे जीतना था। यदि यही प्रयास समर्पण में अर्पित किया गया होता, तो वह अहंकार को पोषित करने के बजाय उसे भस्म कर देता।
2. मृत्यु से बचने की इच्छा ही असुर का वास्तविक धर्म है। हिरण्यकशिपु के हर कर्म के मूल में मरणशीलता तथा परावलम्बन को स्वीकार करने का इनकार है। अध्याय चुपचाप मृत्यु के भय को एक ईश्वर-विहीन जीवन का छिपा हुआ इंजन बताकर उजागर करता है (SB 7.3.1, 36-38)।
3. ईश्वर का शत्रु भी ईश्वर की ही भाषा उधार लेता है। असुर की परम तत्त्व-स्तुति वास्तव में उदात्त है; वह परमात्मा का पूर्ण यथार्थ वर्णन कर सकता है। सत्य का ज्ञान, भागवत हमें फिर स्मरण कराता है, उसके प्रति समर्पण के समान नहीं है (SB 7.3.26-34)।

4. चतुराई का कोई दुर्ग प्रभु को बाहर नहीं रख सकता। हिरण्यकशिपु का वरदान छिद्र-खोज की उत्कृष्ट कृति है, फिर भी, जैसा कथा दिखाएगी, परम प्रभु न भीतर-बाहर से, न दिन-रात से, न मनुष्य-पशु से बँधे हैं। हर वह गणना जो ईश्वर को बाहर छोड़ देती है, अन्ततः ईश्वर द्वारा ही विफल कर दी जाती है (SB 7.3.36-38)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

हिरण्यकशिपु के इस महान श्रम में कुछ प्रायः करुण-सा है। वह वह सहता है जो कोई साधारण प्राणी सह न सके — वर्षों तक पैरों के अँगूठों पर खड़ा रहना, अपनी देह को अस्थि-पर्यन्त खा लिया जाना — और यह सब मृत्यु के विरुद्ध एक दीवार खड़ी करने के लिए। और वह दीवार, अपनी समस्त चतुराई के बावजूद, एक ऐसा छिद्र रखती है जिसे वह देख भी नहीं पाता, क्योंकि वह उस दिशा में है जिसमें देखने से उसने इनकार कर दिया है: प्रभु पर विनम्र निर्भरता की ओर। वह ब्रह्मा के रचे हर प्राणी से सुरक्षा माँगता है, यह भूलकर कि जो अजन्मा है, वह उनमें है ही नहीं। उसकी समस्त त्रासदी उस स्वयं-निर्मित आत्मा की त्रासदी है जो ईश्वर से वरदान तो स्वीकार करेगी, पर ईश्वर को कभी स्वीकार न करेगी। हम भले ही अपनी तपस्या से समुद्र न उमड़ाएँ, पर उसी प्रलोभन को हम लघु-रूप में जानते हैं: अपने जीवन को अपने ही प्रयास से इतनी पूर्णता से सुरक्षित कर लेना कि हमें उन पर टेक लगाने की कोई आवश्यकता ही अनुभव न हो। यह अध्याय हमें कोमलता से दूसरी ओर मोड़ता है — उस सुरक्षा की ओर जो मृत्यु के विरुद्ध हर द्वार बन्द करने में नहीं, बल्कि अविनाशी की ओर एक द्वार खोलने में मिलती है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज उस एक बात पर ध्यान दें जिसे आप पूर्णतः अपने ही बल से नियन्त्रित करने का प्रयास कर रहे हैं — भविष्य की कोई चिन्ता, हानि का कोई भय, कोई योजना जिसे आप बहुत कसकर पकड़े हुए हैं। एक क्षण के लिए उस पकड़ को ढीला करें और सचेत रूप से उसे प्रभु को सौंप दें, भीतर ही भीतर कहते हुए: मैं स्वयं को सुरक्षित नहीं कर सकता; मैं आपकी शरण लेता हूँ। फिर शान्त मन से दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” यह उस समर्पण का एक छोटा-सा कार्य हो जो हिरण्यकशिपु न कर सका — ईश्वर के विरुद्ध एक दुर्ग बनने के बजाय ईश्वर द्वारा सुरक्षित होने का चुनाव।

उपसंहार

सप्तम स्कन्ध का यह तृतीय अध्याय महत्वाकांक्षा को उसके उच्चतम तथा सर्वाधिक भयावह शिखर पर दिखाता है: एक ऐसी आत्मा जो मृत्यु से बचने के लिए इतनी दृढ़ है कि वह मृत्यु के आने के हर सम्भव द्वार को बन्द करने का प्रयत्न करती है, किन्तु उस एक द्वार को भूल जाती है जिसे वह कभी बन्द नहीं कर सकती — उस प्रभु के प्रति समर्पण, जो उसके द्वारा नामित हर स्थिति से परे हैं। हिरण्यकशिपु को विश्वास है कि उसने हर बात सोच ली है; भागवत चुपचाप वचन देता है कि परम प्रभु उसके वरदान के अक्षर को पूर्ण करते हुए भी उसके अभिप्राय को चूर-चूर कर देंगे। इस अध्याय को समाप्त करते हुए हम आने वाली महान कथा की देहरी पर खड़े हैं — असुर के अपने ही घर में ईश्वर के एक निर्भय शिशु का जन्म, तथा नृसिंह का प्राकट्य।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, तृतीय प्रवचन, पृष्ठ 657–661।
- श्रृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-3-hiranyakasipu-austerities-boon-of-deathlessness-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

